Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

भागवत पुराण में प्रतिपादित समाज एवं संस्कृति

पंकज तिवारी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय झाँसी (सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी)
शोध केन्द्र–नेहरू महाविद्यालय ललितपुर उ0प्र0 (सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी)

Article Info
Volume 3 Issue 5
Page Number : 137-142
Publication Issue :
September-October-2020
Article History
Accepted : 15 Oct 2020
Published : 26 Oct 2020

सारांश – भागवत के श्रवण करने से भक्ति के निष्प्राण ज्ञान–वैराग्य प्राण का ही संचार नहीं हुआ, प्रत्युत के पूर्ण यौवन को भी प्राप्त हो गये। भक्त का हृदय भगवान् के दर्शन के लिए उसी प्रकार छटपटाया करता है, जिस प्रकार पक्षियों के पंखरहित बच्चे माता के लिए भूख से व्याकुल बछड़े दूध के लिए तथा प्रिय के विरह में व्याकुल सुन्दरी अपने प्रियतम के लिए छटपटाती है–समस्त पुराणों में भागवत पुराण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस महाग्रन्थ में आदि मध्य और अन्त में वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथायें हैं। इस महाग्रन्थ में भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओं की कथा है। समस्त पुराणों का पठन– पाठन करने के पश्चात् यदि भागवत पुराण का पठन पाठन नहीं किया जाता तो समस्त पुराणों के पाठ का कोई फल नहीं मिलता। भागवत काल में यज्ञों का भी बहुत महत्व था, अनेक पुराणों और भागवत में भी यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञशाला, यूप, पशु यज्ञीय पात्र, कुश, समिधा, आज्य, हविष, पुरोडाश, मन्त्र उच्चारण तथा यज्ञ पुरोहित का उल्लेख मिलता है।

मुख्य शब्द– स्थूलभाव, महामोह, तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, अन्धानुकरण, अभिनिवेश, वेदाध्ययन, पुनर्लेखन, समशीतोष्ण, विंध्याचल, उपजातियां।

यह पुराण संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है। भक्तिशास्त्र का तो यह सर्वस्व है। यह निगम कपतरु का स्वयं गलित अमृतमय फल है। वैष्णव आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के समान भागवत को भी अपना उपजीव्य माना है। वल्लभाचार्य भागवत को महर्षि व्यासदेव की समाधिभाषा कहते हैं अर्थात् भागवत के तत्वों का प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय पर बहुत अधिक पड़ा है।

श्रीमद्भागवत अद्वैततत्त्व का ही प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है–श्री भगवान् ने अपने विषय में ब्रह्मजी को इस प्रकार उपदेश दिया है–

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्चयोऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।[1]

"सृष्टि के पूर्व मैं ही था–मैं केवल था कोई क्रिया न थी। उस समय सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूलभाव न था, असत्कारणात्मक सूक्ष्मभाव न था। यहाँ तक कि इनका कारणभूत प्रधान भी अर्न्तमुख होकर मुझमें लीन था। सृष्टि का प्रपंच मैं ही हूँ और प्रलय में सब पदार्थों के लीन हो जाने पर मैं ही एकमात्र अवशिष्ट रहूँगा।" इससे स्पष्ट है कि भगवान् निर्गुण, सगुण, जीव तथा जगत् सब वही हैं। अद्वयतत्व सत्य है

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

उसी एक अद्वितीय परमार्थ को ज्ञानी लोग ब्रह्म, योगीजन परमात्मा और भक्तगण भगवान् के नाम से पुकारते हैं–

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।[ii]

भागवत के श्रवण करने से भक्ति के निष्प्राण ज्ञान–वैराग्य प्राण का ही संचार नहीं हुआ, प्रत्युत के पूर्ण यौवन को भी प्राप्त हो गये। अतः भगवान् की प्राप्ति का एकमात्र उपाय भक्ति ही है–

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव
न स्वाध्यायस्तपो त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।[iii]

भक्त का हृदय भगवान् के दर्शन के लिए उसी प्रकार छटपटाया करता है, जिस प्रकार पक्षियों के पंखरहित बच्चे माता के लिए भूख से व्याकुल बछड़े दूध के लिए तथा प्रिय के विरह में व्याकुल सुन्दरी अपने प्रियतम के लिए छटपटाती है–

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।[iv]

पुराणों में प्रेम के साथ भक्तिमार्ग को भी दर्शाया गया है। भक्तिमार्ग को ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ बतलाने की चेष्टा भागवत में की गयी है। इसमें बताया गया है कि ज्ञानमार्ग उन लोगों के लिए है जो जीवन से थक चुके हैं किन्तु जिनकी इच्छायें शेष हैं, उन्हें कर्म करके पाने का प्रयत्न करना चाहिए। भक्ति मार्ग को फलदायी बताया गया है, स्वतः परमात्मा कृष्ण कहते हैं कि अपने–अपने कर्म करो परन्तु मेरे प्रति निष्ठा की भावना के साथ यदि तुम सत्य पवित्रता एवं साहचर्य के साथ जीवन व्यतीत करोगे तो तुम भक्ति के माध्यम से मेरे पास पहुँच जाओगे। इसमें यह भी बतलाया गया है कि किसी भी व्यक्ति को बहुत अधिक घमण्ड नहीं करना चाहिए। गर्व सर्वनाश का कारण है। जब द्वारकापुरी के यदुवंशी चरित्रहीन और घमण्डी हो गये तब भगवान् कृष्ण ने उन्हें द्वारका छोड़कर प्रभाष जाने का निर्देश दिया।भागवत कहती है प्राकृतिक वस्तुओं से शिक्षा ग्रहण करो, अपने दुर्भाग्य के दिनों में भी पृथ्वी के समान दृढ़ रहो, पर्वत यह सन्देश देते हैं कि सदैव दूसरों का कल्याण करो, वायु तुम्हें यह शिक्षा देती है कि तुम गतिशील बनो और सर्वत्र व्याप्त हो जाओ, जल तुम्हें पवित्र पावन रहने की शिक्षा देता है। अग्नि तुम्हें शिक्षा देती है कि ज्ञान की ज्योति सदैव तुम्हारे अन्दर प्रज्जवलित रहे मधुमक्खी तुम्हें शिक्षा देती है कि थोड़ा थोड़ा तुम सार तत्व ग्रहण करो, पुराण यह शिक्षा प्रदान करते हैं कि मनुष्य सदैव परहित के लिए जिन्दा रहे और अपने सुकृत्यों से दूसरों को लाभ पहुँचाये। बहुत से लोग यह अनुभव करते हैं कि स्वर्ग में वह आनन्द नहीं है जो आनन्द दूसरों की पीड़ा हरण करने में है।

समस्त पुराणों में भागवत पुराण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस महाग्रन्थ में आदि मध्य और अन्त में वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथायें हैं। इस महाग्रन्थ में भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओं की कथा है। समस्त पुराणों का पठन– पाठन करने के पश्चात् यदि भागवत पुराण का पठन पाठन नहीं किया जाता तो समस्त पुराणों के पाठ का कोई फल नहीं मिलता, जैसे नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु, वैष्णवों में शंकर, वैसे ही पुराणों में भागवत् है।

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा।[v]

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

श्रीमद्भागवत का रचनाकार एक बहुत ही बुद्धिमान व्यक्ति था जिसने तद्युगीन सामाजिक परिस्थितियों का अवलोकन बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से किया था। पुराणों की रचना करने वालों ने वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था को ही मान्यता प्रदान की तथा वेद के नियमों का सरलीकरण करते हुए, उस परम्परा को आगे बढ़ाया है और उसकी रक्षा की है। जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान समय में भी वर्ण व्यवस्था का वही स्वरूप तथा सामाजिक संस्कार आज भी दिखाई देते हैं। अनेक सभ्यताओं के प्रभाव के कारण सामाजिक परिस्थितियों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है किन्तु यह परिवर्तन बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता।

सबसे पहले यह सिद्धान्त उभरकर सामने आता है कि सृष्टि का सृजन किस प्रकार से हुआ ? भारतीय धर्मशास्त्र और सामाजिक विश्वास के अनुसार पहले परम पिता परमात्मा ने सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र, और तारों का निर्माण किया उसके पश्चात पंचतत्व पैदा किए, तत्पश्चात द्रव्य, कर्म और काल के अनुसार जीवों की उत्पत्ति की ये जीव रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी हुए। इसके पश्चात ये जीव जल, थल और आकाश में उड़ने वाले पैदा हुए। इन जीवों में शब्द, स्पर्श, रूप, और रस ये चार गुण होते हैं। इसके पश्चात स्थूल शरीर और स्थूल शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हुईं। ये सब पंचमहाभूतों से उत्पन्न हुए। जीवों के बारे में यदि विचार किया जाय तो यह पृथ्वी अण्डाकार थी और जल में डूबी हुई थी, इससे जो विराट पुरुष पैदा हुआ और उसने जो प्राणी बनाये वे वंश और कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में उत्पन्न हुए।

पुरुषस्य मुखं बृहमं क्षत्रमेतस्य बाहतः।
ऊर्धोवैश्यो भागवतः पदाभ्यां शूद्रोअभ्यजायत।[vi]

यह विभाजन यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मण की पहचान उसके मुख अथवा उसकी विद्वता से होती है। क्षत्रियों की पहचान उसकी भुजाओं अथवा शौर्य से होती है वैश्य की पहचान उसके कृषि कार्य और उद्योगों से होती है। क्योंकि वह समाज के ऊपर के दो वर्गों का बोझ बर्दाश्त करता है तथा शूद्र की पहचान उसके सेवा कार्यों से होती है।

जिस सृष्टि का निर्माण ब्रह्मा ने किया उसमें अज्ञान की पाँच वृत्तियाँ तम अथवा अविद्या, मोह अथवा अष्मिता, महामोह (राग) तामिस्त्र (द्वेष) अन्धतामिस्त्र (अभिनिवेश, अन्धानुकरण) की रचना की। इसका तात्पर्य यह है कि विश्व में जब मानवों का उदय हुआ तो वे मूर्ख थे, उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। वे पशुवत थे। इसके पश्चात उन्हें हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के माध्यम से अनुभव प्राप्त हुए। ज्ञान के पश्चात धर्म का उदय हुआ, धर्म से परमात्मा का आभास हुआ तथा कर्म के माध्यम से अच्छे औरबुरे लोगों की पहचानहुई इसी समय बुद्धिमान व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के धर्मग्रन्थों की रचना की विद्यादान, तप और सत्य धर्म के अंग स्वीकार किये गये। चार प्रकार के वृत्तियाँ उत्पन्न हुईं पंचकर्मों का उदय हुआ, भाषा का उदय हुआ, संगीत के सात स्वरों का उदय हुआ, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हुआ तथा स्त्री और पुरुषों के मध्य में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए दोनों में मैथुन क्रिया से सृष्टि का विकास हुआ। समाज की व्यवस्था के लिए राजाओं की उत्पत्ति हुई। स्वयंभू मनु विश्व के प्रथम राजा थे जिनकी पत्नी का नाम शतरूपा था। तथा इनकी पाँच संतानें थीं जिनमें तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। इस प्रकार से हम देखते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति और सृष्टि का विस्तार, वर्णव्यवस्था, संस्कार व्यवस्था का उदय धीरे धीरे ज्ञान की वृद्धि के साथ हुआ। इस सामाजिक व्यवस्था के विस्तार को इतिहास भी स्वीकार करता है इतिहासकार प्रारम्भिक मानव को पूर्वपाषाण युग, उत्तरपाषाण युग, आखेट युग, चारागाह युग और कृषि युग

में विभाजित करके मानव विकास की परिकल्पना करते हैं। इसी सिद्धान्त की पुष्टि भागवत द्वारा होती है। इसका उल्लेख भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय में विस्तार से है।

जिस प्रकार से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार से यक्ष राक्षस आदि भी उत्पन्न हुए हैं, वास्तव में ये मनुष्य ही है। अपने कर्म के अनुसार इनके नाम अलग अलग हो गये हैं। इसके पश्चात भूत और पिशाच की परिकल्पना हुई जिन्हें आँखों से नहीं देखा जाता, मृत्यु के उपरान्त जीव की यह गति होती है किन्तु जो व्यक्ति तप, विद्या, योग, और समाधि पर विश्वास करते हैं उन्हें भूत, पिशाच, प्रेत, आदि का भय नहीं होता। यह वर्णन भी भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बाईसवें अध्याय में उपलब्ध है अर्थात् कहने का यह तात्पर्य है कि कालान्तर में अनेक प्रकार के अन्धविश्वास समाज में उत्पन्न हो गये थे, समाज के विकास के साथ साथ ज्ञानवान पुरुषों ने नाना प्रकार के अन्वेषण किये तथा उन्होंने पृथ्वी का दोहन प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले दूध की खोज हुई और गोपालन प्रारम्भ हुआ, बाद में पृथ्वी के अनेक खनिज पदार्थों का दोहन प्रारम्भ हुआ, यहाँ के लोगों ने वीर्य ओज और शक्ति प्राप्त करने के लिए अनेक भोग पदार्थ बनाये। दानवों और राक्षसों ने पेय पदार्थ मदिरा का अविष्कार किया, फिर अनेक वस्तुएं निर्मित हुईं। मिट्टी के पात्र बने, गन्धर्वों ने संगीत को जन्म दिया, रुधिरासव का प्रयोग माँसाहारी व्यक्ति करने लगे इसके पश्चात कृषि का आविष्कार हुआ। फलादि वृक्षों के माध्यम से अनेक वस्तुएं उपलब्ध की जाने लगीं जो शाकाहारी व्यक्ति थे वे अन्न का उत्पादन करके उसका प्रयोग भोजन के रूप में करते थे। इसके पश्चात राजाधिराज पृथु ने पृथ्वी को समतल किया फिर उस समतल भूमि में निवास स्थानों का निर्माण कराया। इस प्रकार अनेक गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, अहीरों की बस्ती,पशुओं के रहने के स्थान, छावनियाँ, खाने, किसानों के गाँव और पहाड़ों की तलहटी के गाँव बसाये।

अथास्मिन् भगवान वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता।
निवासान् कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः।।
ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।
घोषान् व्रजान् सशिविरानाकरान् खेटखर्वटान्।[vii]

भारतवर्ष में वर्ण का विशेष महत्व है, सृष्टि के प्रारम्भ में उस समय केवल एक ही वर्ण था तथा वेदाध्ययन, तपस्या, शौच दया और सत्य ही सब कुछ था। आगे चलकर वेदों की संख्या चार हुई तथा उसके पश्चात चार वर्ण उत्पन्न हुए, कालान्तर ब्राह्मण श्रेष्ठ क्षत्रिय उत्तम वैश्य मध्यम और शूद्र अधम माने गये। भागवत के अनुसार शूद्र उन लोगों को माना गया है जो ब्राह्मण, गऊ और देवताओं की निष्कपट भाव से सेवा करते हैं और जो भी मिल जाये उसमें सन्तुष्ट रहते हैं किन्तु इसमें एक ऐसा वर्ग भी है जो अपवित्र है,झूठ बोलता है, चोरी करता है, ईश्वर और परलोक की चिन्ता नहीं करता बात–बात पर झगड़ता है तथा काम, क्रोध और तृष्णा के वश में रहता है इन्हें अन्त्यज कहा गया है। इसी प्रकार भागवत में समाज के व्यक्तियों को आश्रम धर्म पालन करने की भी सलाह दी गयी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण समाज को वर्गों में बाँटकर सामाजिक संघर्ष को दूर करने की चेष्टा की गई है सामाजिक कल्याण की दृष्टि से यह विभाजन बुद्धि क्षमता, शारीरिक क्षमता, साधन क्षमता और कार्यक्षमता पर आधारित है।

साहित्यकार युगद्रष्टा होता है क्योंकि उसका जन्म भी समाज में होता है, समाज में ही उसका पालन पोषण होता है। समाज के मध्य रहकर वह शिक्षा ग्रहण करता है तथा जिन व्यक्तियों से उसका सम्पर्क होता है व जिनके साथ वह लोक व्यवहार स्थापित करता है उनका प्रभाव भी उसके ऊपर पड़ता है। वह अपने साहित्य में वही लिखता है जिसका उसनेअपने जीवन में अनुभव किया है तथा जिन शास्त्रों, कलाओं और विज्ञानों का उसने अध्ययन किया है। उसका भी प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ता है। उसके साहित्य में सुख

दुःख की अनुभूति, करुणा, आनन्द, वेदना और उन आदर्शों की अभिव्यक्ति होती है, जिनकी स्थापना वह समाज में करना चाहता है। इसलिए वह जिस साहित्य का सृजन करता है उस साहित्य में ऐसे सामाजिक परिदृश्य उपस्थित करता है जिनका प्रभाव उसके मस्तिष्क में पड़ा है।

भागवत का रचनाकार कोई एक व्यक्ति नहीं है। यदि हम भागवत का रचनाकार कृष्ण द्वैपायन व्यास को स्वीकार करे तो वह रचनाकार महाभारत के पूर्व हुआ था तथा उसके सम्मुख कई विशेष घटनाओं ने जन्म नहीं लिया था। यदि भागवत पुराण की विषय सामग्री को ध्यान में रखा जाये तो इसकी विषय सामग्री में 1200 ई0 तक की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। इसके वास्तविक रचनाकार का पता आज तक नहीं लग सका है। इस कृति को आज भी कृष्ण द्वैपायन व्यास की रचना माना जाता है। इस सन्दर्भ में एक बात और भी हो सकती है कि किसी विशेष समयावधि में इसका पुनर्लेखन और सम्पादन किया गया हो जिसके माध्यम से तदयुगीन घटनाओं को उसमें जोड़ दिया गया हो।

जिस युग में पुराणों का निर्माण हुआ उस समय समाज काफी विकसित हो गया था। भाषा और ज्ञान का उदय हो चुका था, अनेक धार्मिक स्तूपों का सृजन प्रारम्भ हो चुका था तथा उनमें पुराण भी थे। रचनाकार के समय में, भारतीय समाज में वैष्णव धर्म, शैव धर्म, सूर्य उपासना, शक्ति उपासना प्रारम्भ हो गयी थी। समस्त पुराणों ने इन्द्र, वरुण, परिजन्य, मरुत, अग्नि, सोम, अश्वनि, बृहस्पति, बह्मा देवसम मानव योनियाँ, गन्धर्व, अप्सरा यक्ष, नाग आदि देवरूप में उपस्थित थे।

भागवत काल में यज्ञों का भी बहुत महत्व था, अनेक पुराणों और भागवत में भी यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञशाला, यूप, पशु यज्ञीय पात्र, कुश, समिधा, आज्य, हविष, पुरोडाश, मन्त्र उच्चारण तथा यज्ञ पुरोहित का उल्लेख मिलता है। इस युग में अश्वमेध, राजसूय वाजपेय और अग्निष्टोम, दसपूर्णमास, अग्निहोत्र तथा नरमेध आदि यज्ञों का महत्व था। पौराणिक युग में तीर्थों का महत्व बढ़ा, करीब–करीब सभी पुराणों में विशिष्ट तीर्थ स्थानों का वर्णन है, इन तीर्थों में प्रयाग, वाराणसी, गया, मथुरा, कुरुक्षेत्र, पुष्कर तथा द्वारका का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में तीर्थयात्रा के कर्तव्य तथा तीर्थयात्रा विधि का भी वर्णन मिलता है।

भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएं

भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत में श्लोक है कि हमारी मातृभूमि जिसमें हमने जन्म लिया है वह स्वर्ग से भी महान है। इस महान देश के पूर्व में ब्रह्मा और बाँग्लादेश है जो कभी भारत के ही अंग थे। पश्चिम में पाकिस्तान है जो 1947 से पहले भारतवर्ष का ही एक अंग था। उत्तर दिशा में अफगानिस्तान, नेपाल और चीन जैसे देश हैं तथा दक्षिण दिशा में पूर्व की ओर बंगाल की खाड़ी, दक्षिण मध्य में श्रीलंका और हिन्दमहासागर व दक्षिण–पश्चिम में अरब सागर जैसे महासमुद्र हैं। वर्तमान में यह देश असम, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, जम्मूकश्मीर, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिनाडु आन्ध्रा और उड़ीसा जैसे प्रदेशों में विभाजित है। वर्तमान समय में यहाँ हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, सिख, ईसाई पारसी और यहूदी धर्मावलम्बी निवास करते हैं। इस देश में आर्य और अनार्य दो प्रमुख जाति विशेष के लोग निवास कर रहे हैं। आर्य लोग चार वर्णों में विभाजित हैं और अनार्य लोग अनेक उपजातियों में विभाजित है मुख्य रूप से ये लोग द्रविड़, कन्नड़, मुडिया, माडिया, गौड़, बैगा, कोल, भील खैरवार आदि जातियाँ विभाजित हैं। इन लोगों के पहनावे और लोक संस्कृतियाँ अलग–अलग हैं। इनकी भोजन पद्धति, सामाजिक संस्कार और आचरण का मानदण्ड भी अलग–अलग है।

यहाँ की प्रकृति ने यहाँ की संस्कृति का निर्माण किया है। उत्तर में हिमालय पर्वत है जो विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत है, इस पर्वत से गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र जैसी नदियाँ निकली हैं। भारतवर्ष के मध्य और उत्तर भाग में विंध्याचल की पर्वत श्रेणियाँ हैं, जो भारतवर्ष को दो भागों में विभक्त करती हैं। भारतवर्ष के दक्षिण और पश्चिम में नीलगिरि और अरावली पहाड़ियाँ हैं। उत्तर में गंगा, यमुना नदी के किनारे तथा दक्षिण में कृष्णा,गोदावरी तथा कावेरी नदी के किनारे उपजाऊ भूमि है जहाँ अनेक प्रकार के अनाज उत्पन्न होते हैं। उत्तर और दक्षिण के पठारी भागों में अनेक प्रकार की खनिज सम्पदा उपलब्ध होती है। यहाँ नाना प्रकार के वन हैं जो हमें वन सम्पदा प्रदान करते हैं। विषम प्राकृतिक बनावट होने के कारण यहाँ आवागमन के साधनों का अभाव रहा, इसलिए अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग सभ्यता और संस्कृति विकसित हुई। यहाँ के व्यक्तियों ने उपलब्ध संसाधनों के अनुसार ही अपनी संस्कृति का विकास किया।

किसी भी देश की संस्कृति को वहाँ की जलवायु अथवा पर्यावरण भी प्रभावित करता है। भारतवर्ष समशीतोष्ण कटिबन्ध वाला प्रदेश है अर्थात् यहाँ ग्रीष्म ऋतु में बहुत अधिक गर्मी पड़ती है तथा कुछ स्थानों का तापमान 48° सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है। मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, तथा राजस्थान में गर्मी के दिनों में भीषण लू चलती है। बरसात के दिनों में यहाँ पर्याप्त वर्षा होती है जो कृषि के लिए अत्यन्त सहायक होती है। जाड़े की ऋतु में यहाँ नवम्बर और दिसम्बर अर्थात् क्वांर, कार्तिक, पूष और माघ में बहुत अधिक जाड़ा पड़ता है। इससे उत्तरी भारत का तापमान बहुत अधिक गिर जाता है। प्राचीनकाल में यहाँ के लोग कमर के निचले भाग में धोती या अंगोछा धारण करते थे तथा सिर के ऊपर पगड़ी या साफा बाँधते थे। स्त्रियाँ भी विशेष प्रकार के वस्त्र तथा यहाँ उपलब्ध धातुओं के आभूषण धारण करती थीं। ये वस्त्र तथा आभूषण तापमान तथा ऋतुओं के अनुकूल होते थे।

भारतीय संस्कृति का निर्माण यहाँ के मूल निवासियों भर ने नहीं किया, अपितु इस संस्कृति के निर्माण में उन विदेशी आक्रमणकारियों का भी योगदान था जो बहुत पहले से भारतवर्ष में लूटपाट करने और साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से आये थे। इन विदेशी आक्रमणकारियों में यवन, म्लेक्ष, वैक्ट्रियन, शुक्र, हुण, कुषाण आदि जातियों के लोग थे। इन्होंने भी भारतीय संस्कृति में अपना प्रभाव छोड़ा है। इनमें से कुछ जातियाँ जो 712 ई0पू0 से लेकर ईसा की चौथी शताब्दी तक आयीं उनका विलय भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में हो गया और वे पूर्ण रूप से भारतीय हो गये। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को भारतीय संस्कृति की धारा में इसलिए नहीं समाहित किया जा सका, क्योंकि इन्होंने भारतीय धर्मस्थलों का विनाश किया और यहाँ की धार्मिक भावनाओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया, फिर भी इस्लाम के अनुयायियों ने भाषा, धर्माचरण और पहनावे को प्रभावित किया तथा इन्हीं की वजह से खड़ी बोली और उर्दू का भी उदय हुआ। इस तरह हम देखते हैं कि विदेशी आक्रमणकारियों ने भी यहाँ की संस्कृति के निर्माण में सहयोग प्रदान किया।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमद्भागवत 2/9/32
2. वही 1/2/11
3. वही 11/14/20
4. वही 6/1/26
5. वही 12/13/16
6. वही 2/6/37
7. वही 4/18/30–31